अपनेपन की भावना से आती है ज़िम्मेदारी

अर्चना आर

हम इस बात पर इसलिए ज़ोर देते हैं कि बच्चों को स्कूल की दिन-प्रतिदिन की प्रक्रियाओं को तय करने, सुनियोजित करने और लागू करने में भाग लेना चाहिए, क्योंकि हम यह मानते हैं कि बच्चे स्कूल में सिर्फ़ इसलिए नहीं आते कि उन्हें पढ़ा दिया जाए या वयस्क, यानी शिक्षक, उनपर 'काम' करें। स्कूल में बच्चे की भूमिका केवल प्रेक्षक या प्राप्तकर्ता की नहीं बल्कि एक सक्रिय प्रतिभागी की होती है। यह भागीदारी तभी सुचारु रूप से चल सकती है जब उन्हें अपनी आवश्यकताओं को बताने के अवसर और स्थान दिए जाएँ। बच्चों को मिलने वाले इस स्थान और प्रतिनिधित्व की मात्रा विभिन्न स्कूलों में हमेशा अलग-अलग रही है। उदाहरण के लिए, जिस स्कूल में टेटसुको कुरोयानागी (Tetsuko Kuroyanagi या तोतो-चान)[i] जाया करती थीं, वहाँ पर प्रधानाध्यापक ही नियम बनाया करते थे, लेकिन उन्होंने इस तरह से नियम बनाए कि बच्चों को स्कूल के भीतर पूरी आज़ादी मिलती थी।

एएस नील (A. S. Neill) द्वारा संचालित समरहिल स्कूल[ii] में इसी विचार को और अधिक महत्त्व दिया गया है कि बच्चे ख़ुद अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण करें। नील इस बात पर ज़ोर देते हैं कि हालाँकि 'बच्चों की सरकार' का अर्थ अलग-अलग उम्र के बच्चों के लिए अलग हो सकता है, लेकिन महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे जानते हों कि यह उनसे सरोकार रखती है और वे अपने लिए महत्त्वपूर्ण मामलों के बारे में विचार प्रस्तुत कर सकते हों। उन्होंने बच्चों द्वारा अपने विचारों को निश्चयात्मक रूप से बताने वाले कुछ उदाहरण दिए। जैसे कि चोरी के लिए उपयुक्त सज़ा पर चर्चा करना या आठ-नौ वर्षीय विद्यार्थियों का 12 साल से कम उम्र के बच्चों के धूम्रपान करने पर प्रतिबन्ध को हटाने के लिए बहस करना।

समरहिल जैसे स्कूल में बच्चों को उन बातों पर भी निर्णायक राय देने का अधिकार होता है, जिन्हें बाक़ी दुनिया नकारात्मक या अतिवादी मान सकती है। इन घटनाओं के वर्णन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि इस स्कूल में बच्चों को ख़ुद को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया जाता है। वे उन मामलों को चुनते हैं जिनपर चर्चा करने की ज़रूरत होती है, उनके बीच आपस में या प्रधानाचार्य-शिक्षक-विद्यार्थियों के बीच कोई पदानुक्रम नहीं होता और नियम सर्वश्रेष्ठ तर्क पर आधारित होते हैं। यह प्रक्रिया इसलिए सफल है क्योंकि स्कूल ने पहले ही बच्चों को स्कूल के मुख्य विचार समझा दिए हैं (अनुभव के माध्यम से)। बच्चों को स्वतंत्र रहने दिया है और उन्हें सिखाया गया है कि उनकी स्वतंत्रता में बाधा डालने वाली कोई भी बात स्कूल के सिद्धान्तों के ख़िलाफ़ है और उसपर सवाल उठाए जा सकते हैं।

स्कूल में चुनाव का दिन

मैं अपने एसोसिएट प्रोग्राम के लिए सरकारी उच्च प्राथमिक विद्यालय, कंचगाराहल्ली (यादगीर) गई हुई थी। स्कूल में गाँव के साथ ही एक *तण्डा* (जनजातीय टोला) के भी विद्यार्थी हैं। यादगीर में लगभग हर गाँव में एक *तण्डा* है और वे लोग लम्बाणी भाषा बोलते हैं। आमतौर पर *तण्डा* मुख्य सड़क से दूर, निर्जन और दूरदराज़ के स्थानों में होते हैं।

शनिवार की सुबह थी और बच्चे स्कूल में प्रार्थना के लिए इकट्ठा हुए थे। उन्हें नए शैक्षिक वर्ष के लिए नेतृत्व के पदों के लिए मतदान करना था और स्कूल की पूरी सफ़ाई करनी थी। विभिन्न क्लबों जैसे स्वच्छता, बागवानी, पुस्तकालय, खेल, अँग्रेज़ी, हिन्दी; और दोपहर के भोजन व यूनिफ़ॉर्म की जाँच जैसे कार्यों के लिए विद्यार्थियों का चुनाव होना था। विद्यार्थियों और शिक्षकों से बात करते हुए मुझे पता चला कि उस दिन जो विद्यार्थी अनुपस्थित थे, उनका एक पैटर्न था :

- सातवीं और आठवीं कक्षा की कई लड़कियाँ अनुपस्थित थीं।
- *तण्डा* के कई विद्यार्थी अनुपस्थित थे।

मुख्याध्यापिका ने मुझे बताया कि *तण्डा* के विद्यार्थियों की अनुपस्थिति असामान्य बात नहीं थी; जिस दिन भी स्कूल की सफ़ाई करनी होती थी, उस दिन वे कभी भी स्कूल नहीं आते थे। मुझे यह भी पता चला कि छात्राओं की अनुपस्थिति के पीछे यह सच्चाई थी कि विद्यार्थियों के एक ही समूह को नेतृत्व के पदों पर चुना जाता था। नेतृत्व करने से जो लोकप्रियता मिलती है, उसके साथ शर्म और व्यग्रता की भावनाओं का उत्पन्न होना किशोरों में एक आम बात हो सकती है, लेकिन लड़कियों का हीन या उपेक्षित महसूस करना कुछ अन्य कारकों पर भी निर्भर था, जैसे :

- कई पदों पर लड़के और लड़की, दोनों की नियुक्ति ज़रूरी थी – लेकिन यह सिर्फ़ नाम के लिए था। पद के आधार पर ज़िम्मेदारी या तो लड़के को दी जाती या लड़की को। उदाहरण के लिए, लड़के खेल और बागवानी से सम्बन्धित कार्यों का 'नेतृत्व या व्यवस्था' करते और लड़कियाँ रोज़मर्रा के कामों की देख-रेख करतीं जैसे कि दोपहर का भोजन और स्वच्छता।
- शेष पदों, जैसे कि विभिन्न क्लबों का लीडर बनना, अकादमिक योग्यताओं से प्रभावित होता था, इसलिए केवल चुनिन्दा विद्यार्थियों को ही इन पदों पर चुना जाता था।
- जो लड़के मेहनती थे, उदाहरण के लिए स्कूल में पौधे लाते थे या खेलों में रुचि रखते थे, वे लीडर बन सकते थे। वहीं लड़कियों में सातवीं और आठवीं कक्षा की वही चार-छह लड़कियाँ सभी पदों के लिए चुन ली जातीं क्योंकि शिक्षकों का मानना था कि जो लोग पढ़ाई में अच्छे हों, वे रोज़मर्रा के कामों की देख-रेख के लिए भी काफ़ी ज़िम्मेदार होते हैं।

प्रवासी बच्चे

लम्बाणी-भाषी *तण्डा* के विद्यार्थियों की अनुपस्थिति काफ़ी परेशान करने वाली थी। इस पूरे इलाक़े में उनका शैक्षिक प्रदर्शन एक चुनौती है क्योंकि शिक्षा का माध्यम कन्नड़ है, जो उनके लिए मुश्किल है। लेकिन फिर भी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें वे नेतृत्व कर सकते हैं, जैसे कि हिन्दी क्लब (वे सहजता से हिन्दी बोल लेते हैं), या सांस्कृतिक गतिविधियाँ (वे गाने और नाचने में रुचि दिखाते हैं)। अकादमिक प्रदर्शन की वजह से तो उनके चुने जाने की सम्भावनाएँ कम हुईं ही, लेकिन उनके अनुपस्थित रहने के कारण ये अवसर बिल्कुल समाप्त हो गए।

जब मैंने यह समझने का प्रयास किया कि वे क्यों अनुपस्थित हुए और सफ़ाई वाले दिन स्कूल क्यों नहीं आते थे तो मैंने महसूस किया कि मुझे विद्यालय के समग्र स्तर पर उनकी उपस्थिति को देखना पड़ेगा। शुरुआती कक्षाओं से ही *तण्डा* के बच्चों को, कक्षा में, कन्नड़ भाषी विद्यार्थियों के साथ घुलने-मिलने में दिक़्क़त पेश आती है। अपने माता-पिता का पेशा अलग होने के कारण इन बच्चों का 'मौसमी रूप से अनुपस्थित' (फसल की कटाई, त्यौहारों के समय) होना आम बात है। जब वे काम के लिए अपने परिवारों के साथ बड़े शहरों में प्रवास करते हैं तब भी वे लम्बे समय तक कक्षा में अनुपस्थित रहते हैं। इन बड़े शहरों में वे सीखना ही नहीं, बल्कि अपने कन्नड़ भाषाई वातावरण को भी खो देते हैं। जब वे स्कूल लौटते हैं तो भाषा की बाधा के कारण उन्हें अपने सहपाठियों और शिक्षकों के साथ जुड़ने में कठिनाई होती है। इससे इन विद्यार्थियों को अपने साथियों के बीच बड़ी बेचैनी महसूस होती है और वे लगातार इस चिन्ता में रहते हैं कि उन्हें डाँटा-फटकारा जाएगा।

अपनेपन की भावना

ज़िम्मेदारी और अपनेपन की भावना में गहरा सम्बन्ध है। छोटे बच्चों का उदाहरण देखें तो उनमें पहले अपनेपन की भावना का विकास होता है और बाद में उसके साथ ज़िम्मेदारी जोड़ी जा सकती है। इसका एक उदाहरण एएस नील (A. S. Neill) ने *समरहिल* के एक विवरण में दिया है, जहाँ एक बच्चा खिड़कियाँ तोड़ता रहता था और वह इसे न तो ग़लती मानता और न ही बुरा व्यवहार, लेकिन वह इस नुक़सान की भरपाई के लिए पैसे देने की पेशकश करता था और कहता था कि, *"ये मेरी खिड़कियाँ हैं!'"* (नील 1960)। इस उदाहरण में बच्चे में अपनेपन की भावना पहले आई है और उसकी उम्र ही ऐसी है जिसमें यह उस चीज़ के प्रति स्वामित्व की भावना का रूप ले लेती है। अभी उसकी उम्र उतनी नहीं है कि उसे अपने कार्यों के लिए दोषी महसूस कराया जा सके या यह समझाया जा सके कि उसने जो किया है वह ग़लत है। लेकिन उसके अपनेपन की भावना उसे बेहद स्वाभाविक तरीक़े से अपने कार्यों के प्रति ज़िम्मेदार बनाती है।

जब मैं इस बात पर विचार कर रही थी कि *तण्डा* के विद्यार्थी स्कूल की सफ़ाई करने के कार्य से बचने की कोशिश क्यों करते हैं, तब मैंने ऊपर लिखी घटना के बारे में सोचा। यह तो ज़ाहिर है कि कोई भी बच्चा ऐसे कार्यों को पसन्द नहीं करता जिनमें बस मेहनत करनी पड़े। ऐसे काम करने के लिए बच्चों को किसी और वजह की ज़रूरत होती है, चाहे घर हो या स्कूल। हाँ, एक नियम बनाकर, धमकी देकर या उन्हें यह मानने के लिए मजबूर करके कि ऐसा करना आवश्यक है – उनसे ये काम करवाए जा सकते हैं। लेकिन *तण्डा* के विद्यार्थियों के उदाहरण से पता चलता है कि जब बच्चे किसी काम को करने की कोई व्यक्तिगत वजह नहीं पाते तो उनकी प्रतिक्रिया कैसी होती है। यदि विद्यार्थियों को छह-सात सालों में भी ऐसा नहीं लगा है कि वे अपने स्कूल से जुड़े हुए हैं तो वे स्कूल की सफ़ाई के लिए ख़ुद को ज़िम्मेदार महसूस नहीं करेंगे। और अगर छात्राओं ने छह साल में भी स्कूल के प्रति अपनेपन की भावना का अनुभव नहीं किया है तो किशोरावस्था इस भावना को और बढ़ा ही सकती है।

शिक्षकों के पूर्वाग्रह

चुनावों की बात करें तो शिक्षकों के बीच पूर्वाग्रह काफ़ी आम है, हालाँकि इसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। कोई भी वयस्क व्यक्ति जो कभी-न-कभी सरकारी स्कूल में गया हो और पढ़ाई में बहुत अच्छा रहा हो, इस बात की पुष्टि करेगा। वे आपको बताएँगे कि वे अपने शिक्षकों के चहेते थे और

स्वीकार करेंगे कि उनके स्कूल के सबसे अच्छे शिक्षक वे थे जो बस कुछ चुनिन्दा विद्यार्थियों पर ध्यान देते थे। शिक्षक भी इसे स्वीकार करते हैं कि कुछ विद्यार्थी उनके प्रिय पात्र होते हैं क्योंकि वे सीखने के इच्छुक लोगों को पहचान लेते हैं और महसूस करते हैं कि ऐसे विद्यार्थियों के विकास के लिए ही प्रयास करना बेहतर होगा।

हमें याद रखना चाहिए कि बच्चे स्कूल सरकार का गठन स्कूल के रोज़मर्रा के कार्यों के लिए करते हैं। और यह कि नेतृत्व का अर्थ ज़िम्मेदारी लेना और दूसरों के निर्धारित कर्तव्यों को पूरा करने में उनकी सहायता करना होता है। यह प्रक्रिया तब तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक कि सभी बच्चे निर्णयों में शामिल न हों। निर्णयों को सामूहिक सहमति के आधार पर लिया जाना चाहिए बजाय इसके कि सामूहिक रूप से किसी बात के प्रतिरोध पर सहमति बनाई जाए। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों की सरकार बच्चों से, बच्चों के लिए और उन्हीं के द्वारा यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई जाती है कि इसका काम शिक्षकों के स्थान पर अन्य विद्यार्थियों की निगरानी करना नहीं है, बल्कि एक ऐसा माहौल बनाना है जिसमें विद्यार्थी 'अपने लिए' अपने कार्यों और ज़िम्मेदारियों को पूरा करें।

जब मैंने *तण्डा* के विद्यार्थियों को उस दिन स्कूल में अनुपस्थित पाया तो मुझे लगा कि ख़ुद अपने लिए कुछ करने की यह भावना शायद उन बच्चों में नहीं आ पाई है।

बच्चों द्वारा नियम

हालाँकि, मैं स्कूल के स्तर पर कुछ अधिक नहीं कर पाई, लेकिन मैं यह जानना चाहती थी कि जो शासन प्रणाली बच्चों ने ख़ुद बनाई हो, उसपर उनकी प्रतिक्रिया किस तरह की होगी। जब मेरे पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थियों ने शोर मचाना शुरू किया और देखा कि मैं जिस किताब से कहानी पढ़ रही थी, उसे मैंने बन्द कर दिया है तो पहले उन्होंने एक-दूसरे को चुप रहने के इशारे किए लेकिन फिर ऊँची आवाज़ में एक-दूसरे से बहस करने लगे। जब मैंने उनसे कहा कि वे ख़ुद ऐसा तरीक़ा निकालें जिससे हम प्रत्येक सप्ताह एक कहानी निश्चित रूप से पूरी कर सकें (जो तभी सम्भव है जब उनकी ओर से कोई बाधा न हो) तो उन्होंने इसके काफ़ी व्यापक नियम बना दिए (जिनमें एक नियम यह भी था कि झगड़े से बचने के लिए किसे किसके साथ नहीं बैठना चाहिए!)। मैंने कक्षा छठवीं और सातवीं के साथ भी इन नियमों का प्रयोग किया और प्रयोग सफल रहा।

नियमों से इस बात की गारंटी तो नहीं मिली कि कक्षा का वातावरण बिल्कुल आदर्श हो जाए। लेकिन, यह प्रक्रिया इस तरह से सफल रही कि जब कोई समस्या सामने आती तो बच्चों को पता लग जाता कि क्या ग़लत हुआ और हम इसे कैसे हल कर सकते हैं। बेशक, ऐसे मौक़े भी आए जब समस्याओं को अन्य तरीक़ों से निपटाना पड़ा था। ऐसे अवसर भी आए जब विद्यार्थी मेरे सामने किसी विशिष्ट समस्या को लेकर नहीं आए क्योंकि उन्हें लगा कि उसे सुलझाने का मेरा तरीक़ा काम नहीं करेगा। लेकिन जिस संक्षिप्त अवधि में मैं उनके साथ रही, उसके आधार पर मैं कह सकती हूँ कि बच्चों द्वारा बनाई गई सरकार कारगर होती है। मुझे लगता है कि मैं जो प्रयास कर सकी (बहुत छोटे स्तर पर), उसके कारगर होने की सम्भावना सिर्फ़ इसलिए थी क्योंकि एक तो मैं इसमें सभी बच्चों को शामिल करने को प्राथमिकता दे सकी और दूसरे, मैं सभी बच्चों को शामिल कर सकी क्योंकि उनके द्वारा तैयार किए गए नियम सीधे उनके व्यवहार से सम्बन्धित थे। यह बात उनकी उस अधीरता, लड़ने-झगड़ने और चिल्लाने के बारे में थी जब उनकी पसन्द की कहानी पढ़ी जा रही होती थी। उनके स्वामित्व हासिल करने के बाद ज़िम्मेदारी को तय करना सहज था (भले ही आसान न हो)। मैं केवल पाँचवी-आठवीं कक्षा के साथ ही ऐसा कर सकी। *नली-कली* के मामले में, बच्चों से नियमों को याद रखने की उम्मीद नहीं की जा सकती थी, चाहे वे किसी ने भी बनाए हों। यहाँ तक कि अगर वे पिछले दिन ही इसके लिए सहमत हुए हों तो भी वे अगले दिन अपने खेल में इसे भूल जाते। लेकिन हमने हर कक्षा में कुछ छोटी व्यवस्थाएँ बना रखी थीं (जैसे सिर्फ़ किसी कहानी को सुनते वक़्त अर्धवृत्त में बैठना) जिनसे उन्हें एक स्वरूप और स्थिरता प्राप्त हुई।

मेरी समझ में, हमारे सरकारी स्कूलों में नागरिकता की शिक्षा चार प्रमुख बिन्दुओं के इर्द-गिर्द घूमती है : पहला, बच्चों को एक ऐसा माहौल देना होगा जो उन्हें स्कूल के नागरिकों जैसा महसूस कराए; दूसरा, बच्चों को यह समझना चाहिए कि स्कूल में प्रत्येक सदस्य के कुछ निश्चित अधिकारों के आधार पर ही उनका वातावरण अस्तित्व में है; तीसरा, बच्चों को उन प्रक्रियाओं को बनाए रखने, उनपर डटे रहने और उन्हें कार्यान्वित करने में शामिल होना चाहिए जिनके तहत ये अधिकार लागू हो सकते हैं; और चौथा, बच्चों के लिए लोकतंत्र को कैसे संरचित किया गया है – इस बारे में उनकी जागरूकता को सीखने की औपचारिक प्रक्रिया में लाना चाहिए (उसी तरह जैसे वे अपनी नागरिकशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में भारतीय लोकतंत्र के बारे में सीखते हैं)।

ज़िम्मेदार नागरिक या ज़िम्मेदार विद्यार्थी बनाने का विचार जटिल और चुनौतीपूर्ण लग सकता है, लेकिन प्रत्येक बच्चे को स्कूल के प्रति अपनेपन का अहसास कराना हमारी ज़िम्मेदारी

है। अपनेपन का भाव रखने वाले नागरिक बनाने में अपनी भूमिका निभाना एक अच्छी शुरुआत है। और, मेरे संक्षिप्त अनुभव में, इसे देखना अद्भुत होता है।

[i] तोतो-चान, द लिटिल गर्ल एट द विंडो (1981) एक आत्मकथात्मक संस्मरण है जिसे जापानी टेलीविज़न कलाकार और यूनिसेफ़ गुडविल राजदूत, टेटसुको कुरोयानागी ने लिखा है।

[ii] समरहिल स्कूल, लाइस्टन, सफेक, इंग्लैंड में एक स्वतंत्र, बोर्डिंग स्कूल है। इसे 1921 में अलेक्ज़ेंडर सदरलैंड नील द्वारा इस विश्वास के साथ स्थापित किया गया था कि स्कूल को बच्चे के अनुकूल बनाया जाना चाहिए, न कि बच्चे को स्कूल के अनुकूल।



अर्चना आर अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, यादगीर, कर्नाटक में अँग्रेज़ी की रिसोर्स पर्सन हैं। उन्होंने अँग्रेज़ी विषय में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है। उन्हें कहानियाँ पढ़ने और रोमांचक किताबें ढूँढ़कर बच्चों को पढ़कर सुनाने में मज़ा आता है। उनसे archana.r@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।
अनुवाद : नलिनी रावल